

## Chapter चार

### ब्रह्माण्ड के प्रलय की चार कोटियाँ

इस अध्याय में प्रलय के चार प्रकारों (स्थायी, नैमित्तिक, प्राकृतिक तथा आत्यन्तिक) की तथा भौतिक जीवन-चक्र के रोकने के एकमात्र साधन हरि-नाम कीर्तन की व्याख्या हुई है।

चार युगों के एक हजार चक्र ब्रह्मा के एक दिन के तुल्य होते हैं और ब्रह्मा का प्रत्येक दिन कल्प कहलाता है, जिसमें चौदह मनुओं की आयु (मन्वन्तर) निहित है। ब्रह्मा की रात की अवधि भी वही है, जो दिन की है। रात्रि में ब्रह्मा सोते हैं और तीनों लोकों का संहार हो जाता है। यह नैमित्तिक प्रलय है। जब ब्रह्मा की आयु के एक सौ वर्ष समाप्त होते हैं, तो प्राकृतिक प्रलय या पूर्ण भौतिक प्रलय होता है। उस समय भौतिक प्रकृति के महत् इत्यादि सातों तत्त्व तथा इनसे बना समूचा ब्रह्माण्ड विनष्ट हो जाते हैं। जब मनुष्य को ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तो असलियत समझ में आती है। वह सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्माण्ड को ब्रह्म से विलग अतएव असत्य मानता है। यह आत्यन्तिक प्रलय अथवा अन्तिम प्रलय (मोक्ष) कहलाता है। हर क्षण काल अदृश्य रूप से समस्त उत्पन्न जीवों के शरीर को तथा पदार्थ के अन्य सारे रूपों को बदल देता है। इस रूपान्तर की क्रिया से जीव निरन्तर जन्म तथा मृत्यु के स्थायी प्रलय को प्राप्त होता है। जिन्हें सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त है उनका कहना है कि ब्रह्मा समेत सारे प्राणी सदैव जन्म लेते तथा विनष्ट होते रहते हैं। भौतिक

जीवन का अर्थ ही होता है जन्म तथा मृत्यु अथवा उत्पत्ति और प्रलय। भवसागर को पार करने के लिए जिसे पार करना असंभव होता है, एकमात्र उपयुक्त नाव भगवान् की अमृतमयी लीलाओं का विनीत भाव से श्रवण करना है।

श्रीशुक उवाच

कालस्ते परमाण्वादिद्विपरार्धावधिर्नृप ।

कथितो युगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; कालः—समय; ते—तुमको; परम-अणु—अखंड परमाणु; आदिः—इत्यादि; द्वि-पर-अर्ध—ब्रह्मा की आयु के दो अर्धांश; अवधिः—समाप्ति; नृप—हे राजा परीक्षित; कथितः—वर्णित की गई; युग-मानम्—युग की अवधि; च—तथा; शृणु—अब सुनो; कल्प—ब्रह्मा का दिन; लयौ—संहार, प्रलय; अपि—भी।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा, मैं पहले ही तुम्हें एक परमाणु की गति से मापे जाने वाले सबसे छोटे अंश से लेकर ब्रह्मा की कुल आयु तक काल की माप बतला चुका हूँ। मैंने ब्रह्माण्ड के इतिहास के विभिन्न युगों की माप भी बतला दी है। अब ब्रह्मा के दिन तथा प्रलय की प्रक्रिया के विषय में सुनो।

चतुर्युगसहस्रं तु ब्रह्मणो दिनमुच्यते ।

स कल्पो यत्र मनवश्चतुर्दश विशाम्पते ॥ २ ॥

शब्दार्थ

चतुः-युग—चार युग; सहस्रम्—एक हजार; तु—निस्सन्देह; ब्रह्मणः—ब्रह्मा का; दिनम्—दिन; उच्यते—कहा जाता है; सः—वह; कल्पः—कल्प; यत्र—जिसमें; मनवः—मानव जाति का आदि प्रजापति; चतुर्दश—चौदह; विशाम्-पते—हे राजा।

चार युगों के एक हजार चक्रों से ब्रह्मा का एक दिन बनता है, जो कल्प कहलाता है। हे राजा, इस अवधि में चौदह मनु आते-जाते हैं।

तदन्ते प्रलयस्तावान्ब्राह्मी रात्रिरुदाहता ।

त्रयो लोका इमे तत्र कल्पन्ते प्रलयाय हि ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तत्-अन्ते—उन ( युगों के हजार चक्रों ) के बाद; प्रलयः—प्रलय; तावान्—उसी अवधि के; ब्राह्मी—ब्रह्मा की; रात्रिः—रात; उदाहता—कहा जाता है; त्रयः—तीन; लोकाः—लोक; इमे—ये; तत्र—उस समय; कल्पन्ते—अभिमुख रहते हैं; प्रलयाय—प्रलय के लिए; हि—निस्सन्देह।

ब्रह्मा के एक दिन के बाद, उनकी रात के समय, जो उतनी ही अवधि की होती है, प्रलय होता है। उस समय तीनों लोक विनष्ट हो जाते हैं, उनका संहार हो जाता है।

एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो यत्र विश्वसृक् ।  
शेतेऽनन्तासनो विश्वमात्मसात्कृत्य चात्मभूः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

एषः—यह; नैमित्तिकः—यदा-कदा; प्रोक्तः—कहा जाता है; प्रलयः—प्रलय; यत्र—जिसमें; विश्व-सृक्—ब्रह्माण्ड का सृजनकर्ता, भगवान् नारायण; शेते—लेट जाते हैं; अनन्त-आसनः—अनन्त शेष की शय्या पर; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; आत्म-सात्-कृत्य—अपने भीतर लीन करके; च—भी; आत्म-भूः—ब्रह्मा ।

यह नैमित्तिक प्रलय कहलाता है, जिसमें आदि स्रष्टा नारायण अनन्त शेष की शय्या पर लेट जाते हैं और ब्रह्मा के सोते समय वे समूचे ब्रह्माण्ड को अपने में लीन कर लेते हैं ।

द्विपरार्धे त्वतिक्रान्ते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।  
तदा प्रकृतयः सप्त कल्पन्ते प्रलयाय वै ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

द्वि-परार्धे—दो परार्ध; तु—तथा; अतिक्रान्ते—पूर्ण होने पर; ब्रह्मणः—ब्रह्मा का; परमे-ष्ठिनः—अत्युच्च स्थित जीव; तदा—तब; प्रकृतयः—प्रकृति के तत्त्व; सप्त—सात; कल्पन्ते—अधीन होते हैं; प्रलयाय—प्रलय के; वै—निस्सन्देह ।

जब सर्वोच्च जीव भगवान् ब्रह्मा के जीवन काल के दो परार्ध पूरे हो जाते हैं, तो सृष्टि के सात मूलभूत तत्त्व विनष्ट हो जाते हैं ।

एष प्राकृतिको राजन्प्रलयो यत्र लीयते ।  
अण्डकोषस्तु सङ्घातो विघाट उपसादिते ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

एषः—यह; प्राकृतिकः—प्रकृति के तत्त्वों का; राजन्—हे राजा परीक्षित; प्रलयः—संहार; यत्र—जिसमें; लीयते—लय हो जाता है; अण्ड-कोषः—ब्रह्माण्ड; तु—तथा; सङ्घाटः—मिश्रण; विघाते—विच्छिन्न होने का कारण; उपसादिते—सामना करना होता है ।

हे राजा, भौतिक तत्त्वों के प्रलय के बाद, सृष्टि के तत्त्वों के मिश्रण से बने ब्रह्माण्ड को विनाश का सामना करना होता है ।

तात्पर्य : यह महत्त्वपूर्ण बात है कि राजा परीक्षित के गुरु शुकदेव गोस्वामी अपने शिष्य की मृत्यु के पूर्व ब्रह्माण्ड के प्रलय की विशद व्याख्या कर रहे हैं । ब्रह्माण्ड के संहार की कहानी को ध्यानपूर्वक सुनने से मनुष्य यह आसानी से समझ सकता है कि इस नश्वर जगत से उसका प्रयाण सम्पूर्ण भौतिक जगत के विराट परिप्रेक्ष्य में नगण्य घटना है । ईश्वर की उत्पत्ति के विषय में गम्भीर तथा प्रासंगिक व्याख्याओं से, आदर्श गुरु, शुकदेव गोस्वामी, अपने शिष्य को मृत्यु के लिए तैयार कर रहे हैं ।

पर्जन्यः शतवर्षाणि भूमौ राजन्न वर्षति ।  
तदा निरन्ने ह्यन्योन्यं भक्ष्यमाणाः क्षुधार्दिताः ।  
क्षयं यास्यन्ति शनकैः कालेनोपद्रुताः प्रजाः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

पर्जन्यः—बादल; शत-वर्षाणि—एक सौ वर्षों तक; भूमौ—पृथ्वी पर; राजन्—हे राजा; न वर्षति—वृष्टि नहीं करेगा; तदा—तब; निरन्त्रे—अकाल आने पर; हि—निस्सन्देह; अन्योन्यम्—परस्पर; भक्ष्यमाणाः—खाते हुए; क्षुधा—भूख से; अर्दिताः—पीड़ित; क्षयम्—विनाश को; यास्यन्ति—जाते हैं; शनकैः—क्रमशः; कालेन—काल की शक्ति से; उपद्रुताः—दिग्भ्रमित; प्रजाः—लोग।

हे राजा, ज्यों-ज्यों प्रलय निकट आयेगा, त्यों-त्यों पृथ्वी पर एक सौ वर्षों तक वर्षा नहीं होगी। सूखे से दुर्भिक्ष पड़ जायेगा और भूखी मरने वाली जनता एक-दूसरे को सचमुच खा जायेगी। पृथ्वी के निवासी काल की शक्ति से मोहग्रस्त होकर धीरे-धीरे नष्ट हो जाएँगे।

सामुद्रं दैहिकं भौमं रसं सांवर्तको रविः ।

रश्मिभिः पिबते घोरैः सर्वं नैव विमुञ्चति ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सामुद्रम्—समुद्र का; दैहिकम्—शरीरों का; भौमम्—भूमि का; रसम्—रस; सांवर्तकः—संहार करने वाला; रविः—सूर्य; रश्मिभिः—किरणों से; पिबते—पी जाता है; घोरैः—घोर; सर्वम्—सर्वस्व; न—नहीं; एव—तक; विमुञ्चति—देता है।

सूर्य अपने संहारक रूप में अपनी घोर किरणों के द्वारा, समुद्र का, शरीरों का तथा पृथ्वी का सारा पानी पी लेगा। किन्तु बदले में यह विनाशकारी सूर्य वर्षा नहीं करेगा।

ततः संवर्तको वह्निः सङ्कर्षणमुखोत्थितः ।

दहत्यनिलवेगोत्थः शून्यान्भूविवरानथ ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; संवर्तकः—संहार का; वह्निः—अग्नि; सङ्कर्षण—भगवान् संकर्षण के; मुख—मुख से; उत्थितः—निकला; दहति—जलाता है; अनिल-वेग—वायु के वेग से; उत्थः—उठा हुआ; शून्यान्—रिक्त; भू—पृथ्वी-लोक के; विवरान्—दरारों; अथ—उसके बाद।

इसके बाद प्रलय की विशाल अग्नि भगवान् संकर्षण के मुख से धधक उठेगी। वायु के प्रबल वेग से ले जाई गई, यह अग्नि निर्जीव विराट खोल को झुलसाकर, सारे ब्रह्माण्ड में जल उठेगी।

उपर्यधः समन्ताच्च शिखाभिर्वह्निसूर्ययोः ।

दह्यमानं विभात्यण्डं दग्धगोमयपिण्डवत् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

उपरि—ऊपर; अधः—तथा नीचे; समन्तात्—सभी दिशाओं में; च—तथा; शिखाभिः—लपटों से; वह्नि—अग्नि का; सूर्ययोः—तथा सूर्य का; दह्यमानम्—जलना; विभाति—जगमगाता है; अण्डम्—ब्रह्माण्ड; दग्ध—जला हुआ; गो-मय—गोबर के; पिण्ड-वत्—गोले के समान।

ऊपर से दहकते सूर्य के तथा नीचे से भगवान् संकर्षण की अग्नि से—इस तरह सभी दिशाओं से—जलता हुआ ब्रह्माण्ड गोबर के दहकते पिण्ड की तरह चमकने लगेगा।

ततः प्रचण्डपवनो वर्षाणामधिकं शतम् ।

परः सांवर्तको वाति धूम्रं खं रजसावृतम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; प्रचण्ड—भीषण; पवनः—वायु; वर्षाणाम्—वर्षों का; अधिकम्—अधिक; शतम्—एक सौ; परः—महान्; साम्बर्तकः—प्रलय लाने वाली; वाति—बहती है; धूम्रम्—भूरा; खम्—आकाश; रजसा—धूल से; आवृतम्—ढका।

महान् तथा भीषण विनाशकारी वायु एक सौ वर्षों से भी अधिक काल तक बहेगी और धूल से आच्छादित आकाश भूरा हो जायेगा।

ततो मेघकुलान्यङ्ग चित्र वर्णान्यनेकशः ।

शतं वर्षाणि वर्षन्ति नदन्ति रभसस्वनैः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; मेघ-कुलानि—बादल; अङ्ग—हे राजा; चित्र-वर्णानि—नाना प्रकार के रंगों के; अनेकशः—असंख्य; शतम्—एक सौ; वर्षाणि—वर्ष; वर्षन्ति—मूसलाधार वर्षा करते हैं; नदन्ति—गरजते हैं; रभस-स्वनैः—घोर ध्वनि से।

हे राजा, उसके बाद नाना रंग के बादलों के समूह बिजली के साथ घोर गर्जना करते हुए एकत्र होंगे और एक सौ वर्षों तक मूसलाधार वर्षा करते रहेंगे।

तत एकोदकं विश्वं ब्रह्माण्डविवरान्तरम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; एक-उदकम्—जल की एक राशि; विश्वम्—ब्रह्माण्ड को; ब्रह्म-अण्ड—सृष्टि के अंडे के; विवर-अन्तरम्—भीतर।

उस समय ब्रह्माण्ड की खोल जल से भर जायेगी और एक विराट सागर का निर्माण करेगी।

तदा भूमेर्गन्धगुणं ग्रसन्त्याप उदप्लवे ।

ग्रस्तगन्धा तु पृथिवी प्रलयत्वाय कल्पते ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तदा—तब; भूमेः—पृथ्वी का; गन्ध-गुणम्—सुगन्ध का गुण; ग्रसन्ति—हर लेते हैं; आपः—जल; उद-प्लवे—बाढ़ के समय; ग्रस्त-गन्धा—सुगन्ध से विहीन; तु—तथा; पृथिवी—भूमि; प्रलयत्वाय कल्पते—अप्रकट हो जाती है।

जब सारा ब्रह्माण्ड जलमग्न हो जाता है, तो यह जल पृथ्वी के अद्वितीय सुगन्धि गुण को हर लेगा और पृथ्वी, अपने इस विभेदकारी गुण से विहीन होकर, विलीन हो जायेगी।

तात्पर्य : जैसाकि समूचे श्रीमद्भागवत में बतलाया गया है प्रथम तत्त्व आकाश में ध्वनि का अनूठा गुण पाया जाता है। ज्यों-ज्यों सृष्टि का प्रसार होता है, दूसरा तत्त्व वायु उत्पन्न हो जाता है, जिसमें ध्वनि तथा स्पर्श के गुण पाये जाते हैं। तीसरा तत्त्व अग्नि है, जिसमें ध्वनि, स्पर्श तथा रूप होता है और चौथा तत्त्व जल है, जिसमें ध्वनि, स्पर्श, रूप तथा रस होते हैं। पृथ्वी में ध्वनि, स्पर्श,

रूप, रस तथा गंध पाये जाते हैं। ज्यों-ज्यों हर तत्त्व अपने अनोखे विभेदक गुण को खोता जाता है त्यों-त्यों अधिक सूक्ष्म तत्त्वों से उसकी पहचान नहीं हो पाती और इस तरह उसकी अपनी अनोखी सत्ता पूर्णरूपेण समाप्त हो जाती है।

अपां रसमथो तेजस्ता लीयन्तेऽथ नीरसाः ।

ग्रसते तेजसो रूपं वायुस्तद्रहितं तदा ॥ १५ ॥

लीयते चानिले तेजो वायोः खं ग्रसते गुणम् ।

स वै विशति खं राजंस्ततश्च नभसो गुणम् ॥ १६ ॥

शब्दं ग्रसति भूतादिर्नभस्तमनुलीयते ।

तैजसश्चेन्द्रियाण्यङ्ग देवान्वैकारिको गुणैः ॥ १७ ॥

महान्प्रसत्यहङ्कारं गुणाः सत्त्वादयश्च तम् ।

ग्रसतेऽव्याकृतं राजन्गुणान्कालेन चोदितम् ॥ १८ ॥

न तस्य कालावयवैः परिणामादयो गुणाः ।

अनाद्यनन्तमव्यक्तं नित्यं कारणमव्ययम् ॥ १९ ॥

#### शब्दार्थ

अपाम्—जल का; रसम्—स्वाद; अथ—तब; तेजः—अग्नि; ताः—वह जल; लीयन्ते—विलीन कर लेता है; अथ—उसके बाद; नीरसाः—स्वाद-गुण से रहित; ग्रसते—हर लेता है; तेजसः—अग्नि का; रूपम्—रूप; वायुः—वायु; तत्-रहितम्—उस रूप से विहीन; तदा—तब; लीयते—विलीन हो जाता है; च—तथा; अनिले—वायु में; तेजः—अग्नि; वायोः—वायु का; खम्—आकाश; ग्रसते—हरण कर लेता है; गुणम्—अनुभव होनेवाले गुण ( स्पर्श ); सः—वह वायु; वै—निस्सन्देह; विशति—प्रवेश करती है; खम्—आकाश में; राजन्—हे राजा परीक्षित; ततः—तत्पश्चात्; च—तथा; नभसः—आकाश का; गुणम्—गुण; शब्दम्—शब्द, ध्वनि; ग्रसति—हर लेती है; भूत-आदिः—तमोगुणी अहंकार तत्त्व को; नभः—आकाश; तम्—उस मिथ्या अहंकार में; अनु—पीछे-पीछे; लीयते—विलीन हो जाता है; तैजसः—रजोगुणी मिथ्या अहंकार; च—तथा; इन्द्रियाणि—इन्द्रियों; अङ्ग—हे राजा; देवान्—देवतागण; वैकारिकः—सतोगुणी मिथ्या अहंकार में; गुणैः—( मिथ्या अहंकार के ) प्रकट कार्यों समेत; महान्—महत् तत्त्व; ग्रसति—पकड़ लेता है; अहङ्कारम्—मिथ्या अहंकार को; गुणाः—प्रकृति के गुण; सत्त्व-आदयः—सतो, रजो तथा तमो; च—तथा; तम्—उस महत् को; ग्रसते—पकड़ लेता है; अव्याकृतम्—प्रकृति का अव्यक्त आदि रूप; राजन्—हे राजा; गुणान्—गुणों को; कालेन—समय के द्वारा; चोदितम्—प्रेरित; न—नहीं; तस्य—अव्यक्त प्रकृति का; काल—समय का; अवयवैः—खंडों द्वारा; परिणाम-आदयः—रूपान्तर तथा दृश्य पदार्थ के अन्य परिवर्तन ( सृजन, वृद्धि आदि ); गुणाः—ऐसे गुण; अनादि—आदि रहित; अनन्तम्—बिना अन्त के; अव्यक्तम्—अप्रकट; नित्यम्—नित्य; कारणम्—कारण; अव्ययम्—अव्यय।

तब अग्नि जल से स्वाद ग्रहण करती है, जो अपने अद्वितीय गुण स्वाद को त्याग कर, अग्नि में लीन हो जाता है। वायु, अग्नि में निहित रूप को ग्रहण करता है और तब अग्नि अपना रूप खोकर वायु में विलीन हो जाती है। आकाश, वायु के गुण स्पर्श को पा लेता है और वह वायु आकाश में प्रवेश करती है। तब हे राजा, तमोगुणी मिथ्या अहंकार, आकाश के गुण ध्वनि को ग्रहण करता है, जिसके बाद आकाश मिथ्या अहंकार में विलीन हो जाता है। रजोगुणी मिथ्या अहंकार, इन्द्रियों को ग्रहण करता है और सतोगुणी अहंकार देवताओं को विलीन कर लेता है। तब सम्पूर्ण महत् तत्त्व मिथ्या अहंकार को उसके विविध कार्यों

समेत ग्रहण करता है और यह महत् प्रकृति के तीन गुणों—सतो, रजो तथा तमो—द्वारा जकड़ लिया जाता है। हे राजा परीक्षित, ये गुण काल द्वारा प्रेरित प्रकृति के मूल अव्यक्त रूप द्वारा अधिगृहीत हो जाते हैं। यह अव्यक्त प्रकृति काल के प्रभाव द्वारा उत्पन्न छः प्रकार के विकारों के अधीन नहीं होती, प्रत्युत् इसका न तो आदि होता है, न अन्त। यह सृष्टि का अव्यक्त, शाश्वत, अव्यय कारण है।

न यत्र वाचो न मनो न सत्त्वं  
 तमो रजो वा महदादयोऽमी ।  
 न प्राणबुद्धीन्द्रियदेवता वा  
 न सन्निवेशः खलु लोककल्पः ॥ २० ॥  
 न स्वप्नजाग्रन्न च तत्सुषुप्तं  
 न खं जलं भूरनिलोऽग्निरर्कः ।  
 संसुप्तवच्छून्यवदप्रतर्क्य  
 तन्मूलभूतं पदमामनन्ति ॥ २१ ॥

#### शब्दार्थ

न—नहीं; यत्र—जहाँ; वाचः—वाणी; न—नहीं; मनः—मन; न—नहीं; सत्त्वम्—सतो गुण; तमः—तमोगुण; रजः—रजोगुण; वा—अथवा; महत्—महत् तत्त्व; आदयः—इत्यादि; अमी—ये तत्त्व; न—नहीं; प्राण—प्राणवायु; बुद्धि—बुद्धि; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; देवताः—तथा अधिष्ठाता देवता; वा—अथवा; न—नहीं; सन्निवेशः—विशेष रचना; खलु—निस्सन्देह; लोक-कल्पः—ग्रहों की व्यवस्था का; न—नहीं; स्वप्न—नींद; जाग्रत्—जाग्रत अवस्था; न—नहीं; च—तथा; तत्—वह; सुषुप्तम्—गहरी नींद; न—नहीं; खम्—आकाश; जलम्—जल; भूः—पृथ्वी; अनिलः—वायु; अग्निः—अग्नि; अर्कः—सूर्य; संसुप्त-वत्—गहरी नींद में रहने वाले के समान; शून्य-वत्—शून्य की तरह; अप्रतर्क्यम्—तर्क के द्वारा अभेद्य; तत्—वह प्रधान; मूल-भूतम्—आधार के रूप में; पदम्—वस्तु; आमनन्ति—महापुरुष कहते हैं।

प्रकृति की अव्यक्त अवस्था, जिसे प्रधान कहते हैं, में न वाणी, न मन, न महत् इत्यादि सूक्ष्म तत्त्व और न ही सतो, रजो तथा तमोगुण होते हैं। उसमें न तो प्राणवायु, न बुद्धि, न कोई इन्द्रियाँ या देवता रहते हैं। उसमें न तो ग्रहों की स्पष्ट व्यवस्था होती है, न ही चेतना की विभिन्न अवस्थाएँ—सुप्त, जागृत तथा सुषुप्त—ही होती हैं। उसमें आकाश, जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि या सूर्य नहीं होते। यह स्थिति सुषुप्ति अथवा शून्य जैसी होती है। निस्सन्देह, यह अवर्णनीय है। किन्तु आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता बताते हैं कि प्रधान के मूल वस्तु होने से यह भौतिक सृष्टि का वास्तविक कारण है।

लयः प्राकृतिको ह्येष पुरुषाव्यक्तयोर्यदा ।  
 शक्तयः सम्प्रलीयन्ते विवशाः कालविद्रुताः ॥ २२ ॥

#### शब्दार्थ

लयः—प्रलय; प्राकृतिकः—भौतिक तत्त्वों की; हि—निस्सन्देह; एषः—यह; पुरुष—परमेश्वर का; अव्यक्तयोः—तथा अव्यक्त रूप में उनकी भौतिक प्रकृति का; यदा—जब; शक्तयः—शक्तियाँ; सम्प्रलीयन्ते—पूर्णतया लीन हो जाती हैं; विवशाः—असहाय; काल—काल द्वारा; विदुताः—अव्यवस्थित।

यह प्रलय प्राकृतिक कहलाती है, जिसके अन्तर्गत परम पुरुष तथा उनकी अव्यक्त भौतिक प्रकृति से सम्बन्धित शक्तियाँ, काल के वेग द्वारा अव्यवस्थित होकर, उनकी शक्तियों से विहीन होकर, पूरी तरह से लीन हो जाती हैं।

बुद्धीन्द्रियार्थरूपेण ज्ञानं भाति तदाश्रयम् ।

दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यामाद्यन्तवदवस्तु यत् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

बुद्धि—बुद्धि; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; अर्थ—तथा अनुभूति की वस्तुओं के; रूपेण—रूप में; ज्ञानम्—परब्रह्म; भाति—प्रकट करता है; तत्—इन तत्त्वों का; आश्रयम्—आधार; दृश्यत्व—देखे जाने के कारण; अव्यतिरेकाभ्याम्—अपने कारण से अभिन्न होने के कारण; आदि-अन्त-वत्—जिसका आदि तथा अन्त है; अवस्तु—अपर्याप्त है; यत्—जो भी।

एकमात्र परब्रह्म ही बुद्धि, इन्द्रियों तथा इन्द्रिय-अनुभूति की वस्तुओं के रूपों में प्रकट होता है और वही उनका परम आधार है। जिसका भी आदि तथा अन्त होता है, वह अपर्याप्त (अवस्तु) है क्योंकि वह सीमित इन्द्रियों के द्वारा अनुभूत वस्तु है और अपने कारण से अभिन्न है।

तात्पर्य : दृश्यत्व शब्द सूचित करता है कि सारे सूक्ष्म तथा स्थूल भौतिक रूप परमेश्वर की शक्ति से दृश्य बनते हैं और प्रलय के समय अदृश्य या अप्रकट हो जाते हैं। इसीलिए वे अपने प्रसार तथा विलीन होने के स्रोत से मूल रूप में पृथक् नहीं हैं।

दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथग्भवेत् ।

एवं धीः खानि मात्राश्च न स्युरन्यतमादृतात् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

दीपः—दीपक; चक्षुः—देखने वाली आँख; च—तथा; रूपम्—देखा गया रूप; च—तथा; ज्योतिषः—मूल तत्त्व अग्नि से; न—नहीं; पृथक्—विलग; भवेत्—हैं; एवम्—इसी तरह; धीः—बुद्धि; खानि—इन्द्रियाँ; मात्राः—अनुभूतियाँ; च—तथा; न स्युः—नहीं हैं; अन्यतमात्—जो स्वयं पूर्णतया विलग है; ऋतात्—सत्य से।

दीपक, उस दीपक के प्रकाश से देखने वाली आँख तथा देखा जाने वाला दृश्य रूप, मूलतः अग्नि तत्त्व से अभिन्न हैं। इसी तरह बुद्धि, इन्द्रियों तथा इन्द्रिय अनुभूतियों का परम सत्य से पृथक् कोई अस्तित्व नहीं है यद्यपि वह परम सत्य (परब्रह्म) उनसे सर्वथा भिन्न होता है।

बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति चोच्यते ।

मायामात्रमिदं राजन्नानात्वं प्रत्यगात्मनि ॥ २५ ॥

शब्दार्थ



बुद्धेः—बुद्धि का; जागरणम्—जागृत चेतना; स्वप्नः—नींद; सुषुप्तिः—गहरी नींद; इति—इस तरह; च—तथा; उच्यते—कहलाते हैं; माया-मात्रम्—निरी माया; इदम्—यह; राजन्—हे राजा; नानात्वम्—द्वैत; प्रत्यक्-आत्मनि—शुद्ध आत्मा द्वारा अनुभव किया हुआ।

बुद्धि की तीन अवस्थाएँ जाग्रत, सुप्त तथा सुषुप्त कहलाती हैं। लेकिन हे राजा, इन विभिन्न अवस्थाओं से शुद्ध जीव के लिए उत्पन्न नाना प्रकार के अनुभव माया के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं।

तात्पर्य : शुद्ध कृष्ण-चेतना भौतिक जागरूकता की विभिन्न अवस्थाओं के परे स्थित होती है। जिस तरह प्रकाश की उपस्थिति में अँधेरा दूर हो जाता है उसी तरह मायामयी भौतिक बुद्धि जो सामान्य अनुभूति, स्वप्न तथा गहरी नींद के रूप में अनुभव की जाती है, शुद्ध कृष्ण-चेतना की तेजोमयी उपस्थिति में पूर्णतया लुप्त हो जाती है क्योंकि कृष्ण-चेतना हर जीव की स्वाभाविक स्थिति है।

यथा जलधरा व्योम्नि भवन्ति न भवन्ति च ।

ब्रह्मणीदं तथा विश्वमवयव्युदयाप्ययात् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; जल-धरा:—बादल; व्योम्नि—आकाश में; भवन्ति—हैं; न भवन्ति—नहीं होते; च—तथा; ब्रह्मणि—परब्रह्म में; इदम्—यह; तथा—उसी तरह; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; अवयवि—अंशों से युक्त; उदय—उत्पत्ति; अप्ययात्—तथा प्रलय के कारण।

जिस तरह आकाश में बादल बनते हैं और तब अपने घटक तत्त्वों के मिश्रण तथा विलय के द्वारा इधर-उधर बिखर जाते हैं, उसी तरह यह भौतिक ब्रह्माण्ड, परब्रह्म के भीतर, अपने अवयव रूपी तत्त्वों के मिश्रण तथा विलय से, बनता और विनष्ट होता है।

सत्यं ह्यवयवः प्रोक्तः सर्वावयविनामिह ।

विनार्थेन प्रतीयेरन्यटस्येवाङ्ग तन्तवः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

सत्यम्—सत्य; हि—क्योंकि; अवयवः—अवयवी कारण; प्रोक्तः—कहा गया है; सर्व-अवयविनाम्—समस्त अवयवों का; इह—इस जगत में; विना—से विलग; अर्थेन—प्रकट फल; प्रतीयेरन्—अनुभव किये जा सकते हैं; पटस्य—वस्त्र के; इव—सदृश; अङ्ग—हे राजा; तन्तवः—धागे।

हे राजा, ( वेदान्त-सूत्र में ) यह कहा गया है कि इस ब्रह्माण्ड में किसी व्यक्त पदार्थ को निर्मित करने वाला अवयवी कारण, पृथक् सत्य के रूप में, उसी तरह देखा जा सकता है, जिस तरह वस्त्र को बनाने वाले धागे उनसे बनी हुई वस्तु ( वस्त्र ) से अलग देखे जा सकते हैं।

यत्सामान्यविशेषाभ्यामुपलभ्येत स भ्रमः ।

अन्योन्यापाश्रयात्सर्वमाद्यन्तवदवस्तु यत् ॥ २८ ॥

## शब्दार्थ

यत्—जो भी; सामान्य—सामान्य कारण के रूप में; विशेषाभ्याम्—तथा विशेष कार्य के रूप में; उपलभ्येत—अनुभव किया जाता है; सः—वह; भ्रमः—मोह; अन्योन्य—पारस्परिक; अपाश्रयात्—अधीनता के कारण; सर्वम्—हर वस्तु; आदि-अन्त-वत्—आदि तथा अन्त होने से; अवस्तु—असत्य; यत्—जो।

सामान्य कारण तथा विशिष्ट कार्य के रूप में अनुभव की हुई कोई भी वस्तु भ्रम होनी चाहिए क्योंकि ऐसे कारण तथा कार्य एक-दूसरे के सापेक्ष होते हैं। निस्सन्देह, जिसका भी आदि तथा अन्त है, वह असत्य है।

तात्पर्य : भौतिक कारण के स्वभाव को कार्य के बिना अनुभव नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ, अग्नि के जलने के स्वभाव को उसके कार्य यथा वस्तुओं को जलाने के बिना या राख के बिना, अनुभव नहीं किया जा सकता। इसी तरह जल के भिगोने के गुण को उसके कार्य को देखे बिना, यथा भीगे कपड़े या कागज को देखे बिना, नहीं समझा जा सकता। मनुष्य की संघटनात्मक शक्ति उसके प्रभावशाली कार्य अर्थात् ठोस संस्था को देखे बिना नहीं समझी जा सकती। इस तरह कार्य न केवल अपने कारणों पर निर्भर करते हैं अपितु कारण की अनुभूति भी कार्य के अवलोकन पर निर्भर करती है। इस तरह दोनों का सापेक्षतः वर्णन किया जाता है और वे आदि तथा अन्त से युक्त होते हैं। निष्कर्ष यह निकलता है कि ऐसे सारे कारण तथा कार्य अनिवार्यतः क्षणिक तथा सापेक्ष हैं, इसलिए भ्रामक हैं।

भगवान् यद्यपि समस्त कारणों के कारण हैं, किन्तु उनका न तो आदि है, न अन्त। इसलिए वे न तो भौतिक हैं न भ्रामक। भगवान् कृष्ण के ऐश्वर्य तथा उनकी शक्तियाँ परम सत्य हैं, जो भौतिक कार्यकारण पर आश्रित नहीं होतीं।

विकारः ख्यायमानोऽपि प्रत्यगात्मानमन्तरा ।

न निरूप्योऽस्त्यणुरपि स्याच्चेच्छित्सम आत्मवत् ॥ २९ ॥

## शब्दार्थ

विकारः—जगत का रूपान्तर; ख्यायमानः—प्रकट होने वाला; अपि—यद्यपि; प्रत्यक्-आत्मानम्—परमात्मा; अन्तरा—बिना; न—नहीं; निरूप्यः—चिन्तनीय; अस्ति—है; अणुः—एक परमाणु; अपि—भी; स्यात्—ऐसा हो; चेत्—यदि; चित्-समः—समान रूप से आत्मा; आत्म-वत्—बिना परिवर्तन के उसी रूप में।

भौतिक प्रकृति के एक भी परमाणु का अनुभव किया जाने वाला रूपान्तर, उस परमात्मा के उल्लेख के बिना कोई परम अर्थ नहीं रखता। किसी वस्तु को यथार्थ रूप में विद्यमान होने के लिए उस वस्तु को शुद्ध आत्मा जैसा ही गुण वाला—नित्य तथा अव्यय—होना चाहिए।

तात्पर्य : मरुस्थल में दिखने वाली मृगमरीचिका वास्तव में प्रकाश की अभिव्यक्ति है। जल का झूठा प्राकट्य प्रकाश का विशिष्ट रूपान्तर है। इसी तरह स्वतंत्र भौतिक प्रकृति के रूप में जो झूठमूठ दिखता है, वह भगवान् का रूपान्तर है। भौतिक प्रकृति भगवान् की बहिरंगा शक्ति है।

न हि सत्यस्य नानात्वमविद्वान्यदि मन्यते ।  
नानात्वं छिद्रयोर्यद्वज्ज्योतिषोर्वातयोरिव ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं है; हि—निस्सन्देह; सत्यस्य—परम सत्य का; नानात्वम्—द्वैत; अविद्वान्—अज्ञानी; यदि—यदि; मन्यते—सोचता है; नानात्वम्—द्वैत; छिद्रयोः—दो आकाशों का; यद्वत्—जिस तरह; ज्योतिषोः—दो स्वर्गिक प्रकाशों का; वातयोः—दो वायुओं का; इव—यथा ।

परम सत्य में कोई भौतिक द्वैत नहीं है। अज्ञानी व्यक्ति द्वारा अनुभूत द्वैत, रिक्त पात्र के भीतर तथा पात्र के बाहर के आकाश के अन्तर के समान, अथवा जल में सूर्य के प्रतिबिम्ब तथा आकाश में सूर्य के अन्तर के समान, अथवा एक शरीर के भीतर की प्राणवायु तथा दूसरे शरीर की प्राणवायु में, जो अन्तर है उसके समान है।

यथा हिरण्यं बहुधा समीयते  
नृभिः क्रियाभिर्व्यवहारवर्त्मसु ।  
एवं वचोभिर्भगवानधोक्षजो  
व्याख्यायते लौकिकवैदिकैर्जनैः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; हिरण्यम्—स्वर्ण; बहुधा—अनेक रूपों में; समीयते—प्रकट होता है; नृभिः—पुरुषों के लिए; क्रियाभिः—विभिन्न कर्मों के रूप में; व्यवहार-वर्त्मसु—सामान्य उपयोग में; एवम्—उसी तरह से; वचोभिः—विभिन्न प्रकार से; भगवान्—भगवान्; अधोक्षजः—भौतिक इन्द्रियों के लिए अचिन्त्य दिव्य प्रभु; व्याख्यायते—वर्णन किया जाता है; लौकिक—संसारी; वैदिकैः—तथा वैदिक; जनैः—लोगों द्वारा ।

लोग विभिन्न कार्यों के अनुसार सोने का उपयोग नाना प्रकार से करते हैं, इसलिए सोना विविध रूपों में देखा जाता है। इसी तरह भौतिक इन्द्रियों के लिए अगम्य भगवान् का वर्णन विभिन्न प्रकार के लोगों द्वारा विभिन्न रूपों में—सामान्य तथा वैदिक रूप में—किया जाता है।

तात्पर्य : जो लोग भगवान् के शुद्ध भक्त नहीं हैं, वे सभी भगवान् तथा उनकी शक्तियों का दुरुपयोग करने का प्रयास करते हैं। इस दुरुपयोग की रणनीति के अनुसार, वे परम सत्य का चिन्तन और वर्णन विविध प्रकार से करते हैं। भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत में परम सत्य परब्रह्म अपने यथारूप में उन निष्ठावान लोगों के लाभार्थ प्रकट होते हैं, जो मूर्खतावश भगवान् का मनमाना उपयोग नहीं करना चाहते।

यथा घनोऽर्कप्रभवोऽर्कदर्शितो  
ह्यर्काशभूतस्य च चक्षुषस्तमः ।  
एवं त्वहं ब्रह्मगुणस्तदीक्षितो  
ब्रह्मांशकस्यात्मन आत्मबन्धनः ॥ ३२ ॥

## शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; घनः—बादल; अर्क—सूर्य का; प्रभवः—फल; अर्क—सूर्य द्वारा; दर्शितः—दिखलाया जाता है; हि—निस्सन्देह; अर्क—सूर्य; अंश-भूतस्य—जो अंश रूप है; च—तथा; चक्षुषः—आँख का; तमः—अंधकार; एवम्—उसी तरह से; तु—निस्सन्देह; अहम्—मिथ्या अहंकार; ब्रह्म-गुणः—परब्रह्म का गुण; तत्-ईक्षितः—परब्रह्म के माध्यम से दृश्य; ब्रह्म-अंशकस्य—परब्रह्म के अंश का; आत्मनः—जीवात्मा का; आत्म-बन्धनः—परमात्मा की अनुभूति में बाधक।

यद्यपि बादल सूर्य की ही उपज है और सूर्य द्वारा दृश्य भी होता है, तो भी यह देखने वाली आँख के लिए जो सूर्य का ही दूसरा अंश है, अंधेरा उत्पन्न कर देता है। इसी तरह परब्रह्म की विशेष उपज मिथ्या अहंकार जो परब्रह्म द्वारा ही दृश्य बनाई जाती है, आत्मा को परब्रह्म का साक्षात्कार करने से रोकता है यद्यपि आत्मा भी परब्रह्म का ही अंश है।

घनो यदार्कप्रभवो विदीर्यते

चक्षुः स्वरूपं रविमीक्षते तदा ।

यदा ह्यहङ्कार उपाधिरात्मनो

जिज्ञासया नश्यति तर्ह्यनुस्मरेत् ॥ ३३ ॥

## शब्दार्थ

घनः—बादल; यदा—जब; अर्क-प्रभवः—सूर्य की उपज; विदीर्यते—तितर-बितर कर दिया जाता है; चक्षुः—आँख; स्वरूपम्—अपने असली रूप में; रविम्—सूर्य को; ईक्षते—देखता है; तदा—तब; यदा—जब; हि—भी; अहङ्कारः—मिथ्या अहंकार; उपाधिः—बाहरी आवरण; आत्मनः—आत्मा का; जिज्ञासया—आध्यात्मिक पूछताछ से; नश्यति—नष्ट हो जाता है; तर्हि—उस समय; अनुस्मरेत्—मनुष्य को सही स्मृति प्राप्त होती है।

जब सूर्य से उत्पन्न बादल तितर-बितर हो जाता है, तो आँख सूर्य के वास्तविक स्वरूप को देख सकती है। इसी तरह, जब आत्मा दिव्य विज्ञान के विषय में पूछताछ करके, मिथ्या अहंकार के अपने भौतिक आवरण को नष्ट कर देता है, तो वह अपनी मूल आध्यात्मिक जागरूकता को फिर से प्राप्त होता है।

तात्पर्य : जिस तरह सूर्य उन बादलों को जला सकता है, जो किसी के देखने में अवरोध डालते हैं उसी तरह परमेश्वर (तथा एकमात्र वे ही) उस मिथ्या अहंकार को हटा सकते हैं, जो किसी को उन्हें देखने से रोकता है। किन्तु कुछ प्राणी ऐसे होते हैं, जैसे कि उल्लू, जो सूर्य को देखने के अनिच्छुक होते हैं। इसी तरह जो लोग आध्यात्मिक ज्ञान में रुचि नहीं रखते, वे ईश्वर को कभी भी नहीं देख पायेंगे।

यदैवमेतेन विवेकहेतिना

मायामयाहङ्कारणात्मबन्धनम् ।

छित्त्वाच्युतात्मानुभवोऽवतिष्ठते

तमाहुरात्यन्तिकमङ्ग सम्प्लवम् ॥ ३४ ॥

## शब्दार्थ

यदा—जब; एवम्—इस तरह; एतेन—इससे; विवेक—विवेक की; हेतिना—तलवार से; माया-मय—माया से युक्त; अहङ्करण—मिथ्या अहंकार; आत्म—आत्मा का; बन्धनम्—बन्धन का कारण; छित्त्वा—काट कर; अच्युत—अच्युत; आत्म—परमात्मा का; अनुभवः—अनुभूति; अवतिष्ठते—दृढ़ता से उत्पन्न करता है; तम्—उसको; आहुः—कहते हैं; आत्यन्तिकम्—चरम; अङ्ग—हे राजा; सम्प्लवम्—प्रलय।

हे राजा परीक्षित, जब आत्मा को बाँधने वाले मायामय मिथ्या अहंकार को विवेक-शक्ति की तलवार से काट दिया जाता है और मनुष्य परमात्मा अच्युत का अनुभव प्राप्त कर लेता है, तो वह भौतिक जगत का आत्यन्तिक या परम प्रलय कहलाता है।

नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां परन्तप ।

उत्पत्तिप्रलयावेके सूक्ष्मज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

नित्यदा—निरन्तर; सर्व-भूतानाम्—सारे प्राणियों का; ब्रह्म-आदीनाम्—ब्रह्मा इत्यादि; परम्-तप—हे शत्रुओं के दमनकर्ता; उत्पत्ति—सृजन; प्रलयौ—तथा संहार; एके—कुछ; सूक्ष्म-ज्ञाः—सूक्ष्म वस्तुओं के ज्ञाता; सम्प्रचक्षते—घोषित करते हैं।

हे शत्रुओं के दमनकर्ता, प्रकृति की सूक्ष्म कार्य-प्रणाली के ज्ञाताओं ने घोषित किया है कि उत्पत्ति तथा प्रलय की प्रक्रियायें निरन्तर चलती रहती हैं जिनसे ब्रह्मा इत्यादि सारे प्राणी निरन्तर प्रभावित होते रहते हैं।

कालस्रोतो जवेनाशु ह्यिमाणस्य नित्यदा ।

परिणामिनां अवस्थास्ता जन्मप्रलयहेतवः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

काल—समय का; स्रोतः—प्रबल प्रवाह का; जवेन—वेग से; आशु—तेजी से; ह्यिमाणस्य—बहाये जाने वाले का; नित्यदा—निरन्तर; परिणामिनाम्—रूपान्तरशील वस्तुओं की; अवस्थाः—विभिन्न अवस्थाएँ; ताः—वे; जन्म—जन्म; प्रलय—तथा प्रलय के; हेतवः—कारण।

सारी भौतिक वस्तुओं में रूपान्तर होते हैं और वे काल के प्रबल प्रवाह द्वारा तेजी से क्षीण की जाती हैं। भौतिक वस्तुओं द्वारा प्रदर्शित अपने अस्तित्व की विविध अवस्थाएँ उनकी उत्पत्ति तथा प्रलय के शाश्वत कारण हैं।

अनाद्यन्तवतानेन कालेनेश्वरमूर्तिना ।

अवस्था नैव दृश्यन्ते वियति ज्योतिषां इव ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

अनादि-अन्त-वता—बिना आदि अथवा अन्त के; अनेन—इस; कालेन—काल के द्वारा; ईश्वर—भगवान् की; मूर्तिना—प्रतिनिधि द्वारा; अवस्थाः—विभिन्न अवस्थाएँ; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; दृश्यन्ते—देखी जाती हैं; वियति—बाह्य अवकाश में; ज्योतिषाम्—गतिशील नक्षत्रों के; इव—सदृश।

भगवान् के निर्विशेष प्रतिनिधि स्वरूप, आदि हीन तथा अन्तहीन काल द्वारा उत्पन्न, जगत की ये अवस्थाएँ उसी तरह दृश्य नहीं हैं जिस तरह आकाश में नक्षत्रों की स्थिति में होने

वाले अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तनों को नहीं देखा जा सकता ।

तात्पर्य : यद्यपि हर कोई जानता है कि सूर्य आकाश में निरन्तर गतिशील है किन्तु सूर्य को गति करते सामान्य रूप से कोई नहीं देख पाता । इसी तरह, कोई भी व्यक्ति अपने बालों या नाखुनों को बढ़ते नहीं देख पाता यद्यपि काल के बीतने के साथ उनमें वृद्धि दिखती है । भगवान् की शक्तिरूप काल अत्यन्त सूक्ष्म तथा प्रबल है और जो मूर्ख लोग भौतिक सृष्टि का दोहन करना चाहते हैं उनके लिए वह दुर्लभ्य अवरोध है ।

नित्यो नैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिको लयः ।

आत्यन्तिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

नित्यः—संतत; नैमित्तिकः—आकस्मिक; च—तथा; एव—निस्सन्देह; तथा—भी; प्राकृतिकः—प्राकृतिक; लयः—प्रलय; आत्यन्तिकः—अन्तिम; च—तथा; कथितः—वर्णित होते हैं; कालस्य—काल की; गतिः—प्रगति; ईदृशी—इस तरह की ।

इस प्रकार काल की प्रगति को चार प्रकार के प्रलय के रूप में वर्णित किया जाता है । ये हैं स्थायी, नैमित्तिक, प्राकृतिक तथा आत्यन्तिक ।

एताः कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातु-

नारायणस्याखिलसत्त्वधाम्नः ।

लीलाकथास्ते कथिताः समासतः

कात्स्न्येन नाजोऽप्यभिधातुमीशः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

एताः—ये; कुरु-श्रेष्ठ—हे कुरुओं में श्रेष्ठ; जगत्-विधातुः—ब्रह्माण्ड के स्रष्टा का; नारायणस्य—नारायण का; अखिल-सत्त्व-धाम्नः—सारे अस्तित्वों के आगार; लीला-कथाः—लीलाओं की कथाएँ; ते—तुमसे; कथिताः—कही जा चुकी हैं; समासतः—संक्षेप में; कात्स्न्येन—पूरी तरह; न—नहीं; अजः—अजन्मा ब्रह्मा; अपि—तक; अभिधातुम्—बतला सकने में; ईशः—सक्षम है ।

हे कुरुश्रेष्ठ, मैंने तुम्हें भगवान् नारायण की लीलाओं की ये कथाएँ संक्षेप में बतला दीं हैं । भगवान् इस जगत के स्रष्टा हैं और सारे जीवों के अन्ततः आगार हैं । यहाँ तक कि ब्रह्मा भी उन कथाओं को पूरी तरह बतलाने में अक्षम हैं ।

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्थो-

नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ।

लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण

पुंसो भवेद्विविधदुःखदवार्दितस्य ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

संसार—संसार के; सिन्धुम्—सागर को; अति-दुस्तरम्—पार करने में असम्भव; उत्तितीर्षोः—पार करने की इच्छा करने वाले के लिए; न—नहीं; अन्यः—कोई दूसरी; प्लवः—नाव; भगवतः—भगवान्; पुरुष-उत्तमस्य—परमेश्वर की; लीला-कथा—लीलाओं की कथाएँ; रस—दिव्य आस्वाद के प्रति; निषेवणम्—सेवा भाव; अन्तरेण—इसके अतिरिक्त; पुंसः—पुरुष के लिए; भवेत्—हो सकता है; विविध—अनेक; दुःख—भौतिक दुख की; दव—अग्नि द्वारा; अर्दितस्य—पीड़ित।

असंख्य संतापों की अग्नि से पीड़ित तथा दुर्लघ्य संसार सागर को पार करने के इच्छुक व्यक्ति के लिए, भगवान् की लीलाओं की कथाओं के दिव्य आस्वाद के प्रति भक्ति का अनुशीलन करने के अतिरिक्त कोई अन्य उपयुक्त नाव नहीं है।

तात्पर्य : यद्यपि भगवान् की लीलाओं का वर्णन पूरी तरह से कर पाना असम्भव है, तो भी अंशमात्र प्रशंसा से ही संसार के असह्य कष्ट से बचा जा सकता है। भव-ज्वर को भगवान् के नाम तथा लीलाओं रूपी ओषधि द्वारा ही दूर किया जा सकता है, जिसका यथेष्ट वर्णन श्रीमद्भागवत में हुआ है।

पुराणसंहितामेतामृषिर्नारायणोऽव्ययः ।

नारदाय पुरा प्राह कृष्णद्वैपायनाय सः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

पुराण—सारे पुराणों; संहिताम्—आवश्यक संहिता के; एताम्—यह; ऋषिः—महामुनि; नारायणः—नर-नारायण; अव्ययः—अव्यय; नारदाय—नारद मुनि से; पुरा—प्राचीन काल में; प्राह—कहा; कृष्ण-द्वैपायनाय—कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास से; सः—उसने, नारद ने।

बहुत दिन बीते सारे पुराणों की यह आवश्यक संहिता, अच्युत नर-नारायण ऋषि ने नारद से कही थी, जिन्होंने फिर इसे कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास से कही।

स वै मह्यं महाराज भगवान्बादरायणः ।

इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेदसम्मिताम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने; वै—निस्सन्देह; मह्यम्—मुझसे, शुकदेव गोस्वामी से; महाराज—हे राजा परीक्षित; भगवान्—परमेश्वर के शक्तिशाली अवतार; बादरायणः—श्रील व्यासदेव ने; इमाम्—इस; भागवतीम्—भागवत शास्त्र को; प्रीतः—तुष्ट होकर; संहिताम्—संहिता; वेद-सम्मिताम्—चारों वेदों के ही तुल्य।

हे महाराज परीक्षित, महापुरुष श्रील व्यासदेव ने मुझे उसी शास्त्र श्रीमद्भागवत की शिक्षा दी जो महत्त्व में चारों वेदों के ही तुल्य है।

इमां वक्ष्यत्यसौ सूत ऋषिभ्यो नैमिषालये ।

दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ सम्पृष्टः शौनकादिभिः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

इमम्—इसे; वक्ष्यति—कहेगा; असौ—हमारे समक्ष उपस्थित; सूतः—सूत गोस्वामी; ऋषिभ्यः—ऋषियों से; नैमिष-आलये—नैमिषारण्य में; दीर्घ-सत्रे—दीर्घकाल तक चलने वाले यज्ञ के अवसर पर; कुरु-श्रेष्ठ—हे कुरुओं में श्रेष्ठ; सम्पृष्टः—पूछे जाने पर; शौनक-आदिभिः—शौनक इत्यादि के द्वारा।

हे कुरुश्रेष्ठ, हमारे समक्ष आसीन यही सूत गोस्वामी नैमिषारण्य के विराट यज्ञ में एकत्र ऋषियों से इस भागवत का प्रवचन करेंगे। ऐसा वे तब करेंगे जब शौनक आदि सभा के सदस्य उनसे प्रश्न करेंगे।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध के अन्तर्गत “ब्रह्माण्ड के प्रलय की चार कोटियाँ” नामक चतुर्थ अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।